भूख, कुपोषण व स्वास्थ्य का संकट

भारत डोगरा

जो डॉक्टर समर्पित भाव से निर्धन वर्ग की सेवा के लिए आगे आते हैं, उनके सामने सबसे बड़ी कठिनाई यह आती है कि वे डॉक्टरी इलाज चाहे जितना भी अच्छा करें परंतु जब तक मरीज़ को पर्याप्त पोषण नहीं मिल रहा है तब तक उसे टिकाऊ स्वास्थ्य लाभ नहीं मिल पाता है। यही वजह है कि ऐसे कई डॉक्टर अब इलाज के साथ निर्धन मरीज़ों के लिए उचित खाद्य की व्यवस्था की मांग भी उठा रहे हैं।

हमारा देश विश्व में भूख व कुपोषण से सबसे बुरी तरह प्रभावित क्षेत्रों में है और इसका सीधा सम्बंध लोगों के स्वास्थ्य के संकट से है। छोटे बच्चों के पोषण व स्वास्थ्य की स्थिति सबसे चिंताजनक है, पर व्यस्क लोगों में भी स्थिति कोई कम गंभीर नहीं है। ग्रामीण निर्धन वर्ग के संदर्भ में कुपोषण का अर्थ प्रायः भूख व अल्प-पोषण भी है।

नंदी फाउंडेशन के हाल के चर्चित अध्ययन से पता चला कि पांच वर्ष से कम आयु के लगभग 44 प्रतिशत बच्चे कुपोषित हैं। कुछ ऐसे ही आंकड़े पहले नेशनल न्यूट्रीशन मॉनिटरिंग ब्यूरो के सर्वेक्षणों से भी सामने आ चुके हैं। राष्ट्रीय पारिवारिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण, 2005-06 (एन.एफ.एच.एस.-3) के आंकड़ों से पता चला है कि 5 वर्ष से कम आयु वर्ग में बच्चों की लगभग 50 प्रतिशत मौतें काफी हद तक उनके पोषण की बदहाली से जुड़ी हैं। इसे सरल भाषा में कहें तो प्रति वर्ष भारत में लाखों बच्चे भूख व कुपोषण से मरते हैं।

बच्चों को उचित पोषण न मिलने को प्रायः बच्चों के कम वज़न के आंकड़ों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। पांच वर्ष से कम आयु वर्ग के आंकड़ों को इस संदर्भ में देखें तो भारत की स्थिति अपने आसपास के देशों में सबसे विकट है। यहां तक कि हमारी स्थिति सबसे गरीब देशों से भी अधिक चिंताजनक है। संयुक्त राष्ट्र संघ जिन देशों को सबसे कम विकसित देशों की श्रेणी में रखता है वहां इस आयु वर्ग में कम वज़न के बच्चों का प्रतिशत 27 है जबकि भारत में यह प्रतिशत 42 है। ऐसे बच्चों का प्रतिशत चीन में मात्र 4 है, श्रीलंका में 21, भूटान में 13, पाकिस्तान में 31, नेपाल में 39 व बांगलादेश में 41 है। हमारे देश के बच्चों की स्थिति इन सबसे बुरी है जो चिंता का विषय है।

आंगनवाड़ी व मध्यान्ह भोजन में अभी बहुत सुधार की ज़रूरत है। विशेषकर 6 महीने से 3 वर्ष के अति महत्त्वपूर्ण आयु वर्ग को इन योजनाओं से कुछ विशेष लाभ नहीं है। वर्तमान योजनाओं में इस आयु वर्ग की उपेक्षा हुई है। इस कमी को दूर करने के लिए झूलाघर चलाने चाहिए। जन स्वास्थ्य सहयोग द्वारा फूलवाड़ी नाम से चलाए गए झूलाघरों के बहुत सार्थक परिणाम नज़र आए हैं।

वयस्कों में पोषण की स्थिति का एक द्योतक बॉडी मॉस इंडेक्स है जो वज़न (किलोग्राम) को ऊंचाई (मीटर में) के वर्ग से भाग करके प्राप्त किया जाता है। इस आधार पर नेशनल न्यूट्रीशन मॉनिटरिंग ब्यूरो के नवीनतम सर्वेक्षण में देश के 35 प्रतिशत गांववासी कुपोषित/अल्पपोषित पाए गए हैं (महिलाएं 36 प्रतिशत व पुरुष 33 प्रतिशत)। इसी तरह यदि केवल अनुसूचित जनजातियों व अनुसूचित जातियों को देखें तो यह आंकड़ा क्रमशः 42 व 38 प्रतिशत तक पहुंच जाता है। यदि केवल आदिवासी घनी आबादी, इंटीग्रेटिड ट्राइबल डेवलेपमेंट एरिया वाले क्षेत्र के आंकड़ों को देखें तो यह आंकड़े महिलाओं के लिए 49 प्रतिशत व पुरुषों के लिए 41 प्रतिशत तक हैं।

इसके अतिरिक्त न्यूट्रीशन ब्यूरो के आंकड़े यह भी बताते हैं कि 55 प्रतिशत पुरुषों में व 70 प्रतिशत महिलाओं में एनीमिया या खून की कमी है जिसका एक मुख्य कारण पोषण में लौह तत्वों की कमी है। अन्य खनिज तत्वों, विशेषकर पोटेशियम और ज़िंक, की कमी तथा विशेषकर गर्भवती व स्तनपान करा रही महिलाओं में कैल्शियम की कमी विशेष चिंता का विषय है। विटामिनों की कमी भारतवासियों के पोषण में बड़े पैमाने पर देखी गई है व मात्र गोलियों की

मदद से इनकी पूर्ति नहीं हो सकती।

वैज्ञानिक तौर पर यह भलीभांति सिद्ध हो चुका है कि जो बच्चे व व्यस्क, महिला व पुरुष भूख, अल्प-पोषण और कुपोषण से अधिक त्रस्त होते हैं, उनके गंभीर बीमारियों से प्रभावित होने की संभावना पौष्टिक खानपान वालों की अपेक्षा कहीं अधिक होती है।

साथ ही यह भी सच है कि जब भूख से कमज़ोर शरीर को ये बीमारियां पकड़ती हैं तो ऐसे मरीज़ के ठीक होने की संभावना पौष्टिक भोजन प्राप्त करने वाले मरीज़ की अपेक्षा कहीं कम होती है। विशेषकर बच्चों में तो यह स्थिति बहुत स्पष्ट नज़र आती है।

जहां तक तपेदिक जैसी संक्रामक बीमारियों का सवाल है तो यह काफी पहले से समझा जा रहा है कि कुपोषण व भूख से कमज़ोर हुए शरीर में इनका आक्रमण अधिक होता है। पर अब यह स्पष्ट होता जा रहा है कि ग्रामीण भारत में प्रचलित अनेक अन्य बीमारियों में भी भूख व कुपोषण की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। जन स्वास्थ्य सहयोग नामक एनजीओ ने छत्तीसगढ़ के ग्रामीण क्षेत्रों में अति महत्त्वपूर्ण स्वास्थ्य सेवा कार्य किया है और उसका दस्तावेज़ीकरण भी किया है। एक मुख्य निष्कर्ष यह निकला है कि कैंसर हो या र्‌यूमेटिक हृदय रोग या दुबले लोगों को होने वाला मधुमेह या उच्च रक्तचाप, इन सभी में भूख और कुपोषण की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

भूख, अल्प-पोषण और कुपोषण का सबसे बड़ा कारण गरीबी है। भारत को एशिया के अनेक अन्य देशों की अपेक्षा गरीबी कम करने में अपेक्षाकृत कम सफलता मिली है। वर्ष 2002-2010 के दौरान किए गए अध्ययनों-सर्वेक्षणों के आधार पर मानव विकास रिपोर्ट 2010 में जनसंख्या में गरीब लोगों व अत्यधिक गरीब लोगों के आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं। गरीब व अत्यधिक गरीब लोगों के प्रतिशत चीन में क्रमशः 6 व 5, वियतनाम में 8 व 1, श्रीलंका में 14 व 1 बताए गए हैं। इसी रिपोर्ट में भारत में गरीबों व अत्यधिक गरीबों के प्रतिशत 16 व 29 बताए गए हैं।

भारत में गरीबी कम करने की विफलता का प्रमुख कारण यह है कि विषमता कम करने के समुचित प्रयास नहीं हुए हैं। आज़ादी के बाद कुछ वर्षों तक तो इस ओर थोड़ा-बहुत ध्यान दिया गया, पर पिछले लगभग 20-25 वर्षों से इस ओर से ध्यान पूरी तरह हटा लिया गया है और अर्थ व्यवस्था में खुलेपन के नाम पर बस जीडीपी वृद्धि की बात हो रही है, विषमता जितनी बढ़ती है बढ़ती रहे।

इसका असर गांवों में भी देखने में आया और गांववासियों की जल, जंगल, ज़मीन आदि हथियाने के लिए बाहरी दबाव बहुत तेज़ी से बढ़े। विस्थापन का खतरा तेज़ी से बढ़ा। किसानों की भूमि छिनने लगी। कर्ज़ का संकट बढ़ने लगा। भूमि सुधारों की उपेक्षा और तीखी होती गई। इसका असर इस रूप में सामने आया कि भूमि वितरण असमानता आधारित ही बना रहा और भूमिहीन लोगों की संख्या और बढ़ गई। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण, 2003-04 के भूस्वामित्व वितरण के आंकड़ों के अनुसार नीचे के 80 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों के पास मात्र 22 प्रतिशत भूमि है।

तेज़ी से बढ़ते विस्थापन के कारण यह स्थिति और विकट हो रही है। जहां एक ओर धनी वर्ग गांवों में अपनी सुख-सुविधा के लिए तेज़ी से फार्म हाउस बना रहे हैं, वहीं गांवों के निर्धन मूल निवासियों के हाथ से भूमि निकलती जा रही है।

यदि विषमता और गरीबी कम करने को अर्थ व्यवस्था सुधार के केंद्र में लाया जाए और इसे प्रमुखता दी जाए तो भूख और कुपोषण को कम करने में बहुत सहायता मिलेगी। सबसे अधिक ध्यान इस ओर देना चाहिए कि गरीब और कमज़ोर वर्ग की आर्थिक स्थिति में सुधार हो। जल, जंगल, ज़मीन का नियोजन व बंदोबस्त इस तरह से हो कि इन पर आधारित करोड़ों परिवारों की आजीविका मज़बूत हो। विस्थापन की संभावना न्यूनतम हो। भूमि सुधार, विशेषकर आदिवासियों की भूमि-हकदारी को सुनिश्चित करने व भूमिहीनों में भूमि वितरण को आगे बढ़ाने को उच्च प्राथमिकता देना आवश्यक है। खेती-किसानी के संकट को दूर कर छोटे किसानों के आजीविका आधार को मज़बूत करना बहुत ज़रूरी है।

अधिक रासायनिक खाद व कीटनाशक दवाओं के उपयोग से उगने वाले खाद्य पदार्थों से जुड़ी स्वास्थ्य समस्याओं को विश्व स्तर पर स्वीकारा गया है। लंदन फूड कमीशन की

चर्चित रिपोर्ट में बताया गया है कि ब्रिटेन में मान्यता प्राप्त कीटनाशकों व जंतुनाशकों का सम्बंध कैंसर व जन्मजात विकारों से है। अमरीका में नेशनल एकेडमी ऑफ साइंस की एक रिपोर्ट में बताया गया है कि खाद्य पदर्थों में कीटनाशकों की उपस्थिति के कारण दस लाख अतिरिक्त कैंसर केसेस की आशंका है।

विश्व संसाधन रिपोर्ट बताती है कि कीटनाशकों का बहुत कम हिस्सा, कुछ कीटनाशकों में मात्र 0.1 प्रतिशत ही अपने लक्षित कीट को मारता है। शेष मात्रा अन्य जीवों को नुकसान पहुंचाती है तथा भूमि व जल को प्रदूषित करती है।

पोषण विशेषज्ञ सी. गोपालन ने बताया है कि रासायनिक उर्वरकों के अंधाधुंध उपयोग से मिट्टी में सूक्ष्म पोषक तत्वों की गंभीर कमी उत्पन्न हो गई है जो इस मिट्टी में उगाए गए खाद्य पदार्थों में भी नज़र आने लगी है। विकास मामलों के विख्यात लेखक रिचर्ड डाऊथवेट ने लिखा है कि नाइट्रोजन खाद तैयार फसल में नाइट्रेट स्तर को कंपोस्ट से उगाए गए खाद्यों की तुलना में चार से पांच गुना बढ़ा सकती है जबकि विटामिन सी को कम करती है। यह बदलाव खतरनाक है क्योंकि मुंह में पाए जाने वाले बैक्टीरिया नाइट्रेट की अधिकता से कैंसर उत्पन्न करने वाले नाइट्रोसेमीन पैदा कर सकते हैं, जबकि विटामिन सी कैंसर से रक्षा करता है।

अतः जैविक खेती की ओर जाना लाज़मी है और इससे किसानों का खर्च भी कम होगा। रासायनिक खाद, कीटनाशक, खरपतवारनाशक आदि पर खर्च कम होने से किसानों को बहुत राहत मिलेगी। इनके विकल्प गोबर, पत्ती, फसल अवशेष, गोमूत्र, नीम आदि से यानी स्थानीय संसाधनों से खेत व गांव में तैयार किए जा सकते हैं।

भारतीय गांवों की स्थिति में जैविक खेती के साथ सस्ती खेती व आत्म-निर्भरता की खेती जोड़ना ज़रूरी है। जो खेती स्थानीय संसाधनों के बेहतर उपयोग पर आधारित है, वही आत्म-निर्भर है, वही सस्ती भी है। जैव-विविधता व उचित फसल चक्र अपनाकर भूमि के प्राकृतिक उपजाऊपन को बनाए रखने व हानिकारक कीड़ों को दूर रखने के उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहिए। साथ ही जल व नमी संरक्षण, पेड़ों व चारागाहों की हरियाली व पशुधन की समृद्धि पर भी ध्यान देना होगा।

सरकार की नीतियों में इस तरह का बदलाव बहुत ज़रूरी है कि वह रासायनिक खाद व कीटनाशकों को निरर्थक व हानिकारक सबसिडी देने के स्थान पर अपने तमाम उपलब्ध वित्तीय, प्रशासनिक, वैज्ञानिक संसाधनों का उपयोग जैविक कृषि को बढ़ावा देने के लिए करे व जैविक कृषि अपनाने वाले किसानों की सहायता करे।

एक अन्य सवाल यह उठता है कि क्या जैविक खेती को बढ़ाने के प्रयास उन बीजों पर आधारित हो सकते हैं जो तथाकथित हरित क्रांति के दौरान प्रचलित हुए? हरित क्रांति के नाम पर मूलतः फसलों की वे संकर किस्में फैलाई गईं जो अधिक रासायनिक खाद के उपयोग से उत्पादकता बढ़ाने का दावा करती थीं। अतः इन बीजों के आधार पर जैविक कृषि फैलाने के प्रयास में एक विरोधाभास है। मूलतः हमें परंपरागत बीजों की विरासत की ओर लौटना होगा व इनके आधार पर उत्पादकता बढ़ाने के प्रयास भी करने होंगे। डॉ. आर. एच. रिछारिया जैसे शीर्ष के वैज्ञानिकों के अनुसंधान से यह स्पष्ट हो गया है कि परंपरागत किस्मों में अनेक उच्च उत्पादकता वाली किस्में मौजूद हैं जो रासायनिक खाद व कीटनाशक दवा के उपयोग के बिना कारगर हो सकती हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***